20 फरवरी, 2010 को मध्याह्न पूर्व 11 बजे अंसारी आडिटोरियम, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली में 'इस्लाम तथा पूर्व-देशीय धर्मों के बीच अंतर्राष्ट्रीय वार्ता' नामक विषय पर सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर माननीय उपराष्ट्रपति श्री मो. हामिद अंसारी का अभिभाषण

इस्लाम तथा पूर्व-देशीय धर्म

धार्मिक उपदेश एक कठिन विषय है। मैं इसमें सक्षम होने का दावा नहीं करता। सर्वधर्म संवाद दीखने में सरल लगता है किंतु वास्तव में बहुत ही कठिन है। यहां भी, मैं किसी विशेषज्ञता का दावा नहीं करता। दोनों ही बातें एक नौसिखिये को डरा देती हैं और नव-दीक्षित व्यक्ति को जागरूक बना देती हैं। इसके बावजूद, मैं डा. जफरुल इस्लाम खान साहब के अनुरोध को टाल नहीं सका और आज आपके बीच उपस्थित हो गया हूँ। जार्ज बरनार्ड शॉ ने कहा था कि प्रलोभन का प्रतिरोध नहीं किया जाना चाहिए:

रंग-ए-शराब से मेरी नीयत बदल गई
वाइज़ की बात रह गई, साकी की चल गई

हमारे देश में जिस विषय पर एक खुली चर्चा किये जाने की सख्त जरूरत है, उस विषय पर चर्चा आरंभ करने के लिए इस संगोष्ठी के आयोजक बधाई के पात्र हैं। मेरी व्यक्तिगत रुचि इस विषय पर एतराज करने में है। यह शीर्षक ऐसे विषय पर एक भौगोलिक परिभाषा थोप रहा है जो कि भौगोलिक सीमाओं से परे है। यह धर्मों या आस्थाओं को उनके उद्‌गम क्षेत्र के आधार पर वर्गीकृत करता है। यह सर्वधर्म संवादों के इतिहास के अध्ययन को बहुत ही सीमित कर देता है।

पियु रिसर्च सेंटर द्वारा विश्व की मुस्लिम आबादी के सर्वेक्षण के परिणामों के मद्देनज़र यह 'पूर्व देशीय' विभेद महत्वपूर्ण है। इससे पता चला है कि विश्व के 1.57 बिलियन मुसलमानों में से दो-तिहाई एशिया में रहते हैं। सचमुच, इस्लाम भी पूर्व देशीय धर्म ही है।

वह चाहे जो भी हो और इस विषय के प्रत्यक्ष महत्व को देखते हुए मैं यह मानता हूँ कि इसका उद्देश्य है इस्लाम की उन धर्मों के साथ परस्पर क्रिया की जांच करना, जिनका उद्भव मूल रूप से भारत और चीन से हुआ है। ये प्रधान रूप से भारत में हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म, जैन धर्म तथा ईरान में पारसी धर्म और चीन में कन्फ्यूशियसवाद तथा ताओवाद हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह हो सकता है कि जबकि हाल ही में इस्लाम, ईसाई धर्म और यहूदी धर्म के बीच संवाद चलता आ रहा है, उपर्युक्त धर्मों के बीच ऐसा नहीं हुआ है। एक और कारण, जो समान रूप से वैध है, वह है भारतीय समाज की धार्मिक विविधता और इसके परिणामस्वरूप अन्य धर्मों से वार्ता की आवश्यकता।

यह नोट किया जाना चाहिए कि ये सभी धर्म यूरोप तथा एशिया की धरती तथा जनता में से उभरे हैं और उनके अधिकतर अनुयायी भौगोलिक दृष्टि से आस-पास के क्षेत्रों में बसते हैं। विश्व की दो-तिहाई से अधिक आबादी इन्हीं से मिलकर बनती है।

जीवन का सामान्य कारबार इन्हें विगत में समय-समय पर एक साथ ले आया और आज भी ला रहा है। ऐसे सामाजिक परस्पर व्यवहार में धार्मिक संवाद शामिल हो सकता है, परन्तु यह जरूरी नहीं कि दोनों समानार्थक हैं। इस बातचीत की बारम्बारता और गहराई समय और स्थान के साथ बदलती रही। आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के कारण दूरियों के कम होने के बावजूद संवाद के पारंपरिक माध्यमों और पद्धतियों के लोप हो जाने से इस प्रकार की बातचीत प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई हैं।

'सभ्यताओं के संघर्ष' संबंधी वाद-विवाद तथा विश्व के विभिन्न भागों में दहकते नृजातीय एवं धार्मिक टकरावों के बीच शीत युद्ध के बाद वाले विश्व में सर्वधर्म संवाद राष्ट्रों और समूहों के बीच प्रमुख सिविल समाज प्रयास के रूप में उभरा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में 'सभ्यताओं के गठबंधन' की पहल राजनीतिक, धार्मिक, मीडिया तथा सिविल समाज के नेताओं, विशेषकर मुस्लिम और पाश्चात्य समाजों के बीच संवाद को प्रोत्साहित करने में लगे लोगों और संगठनों को आपस में जोड़ती है। ऐसी अन्य संवाद संरचनाओं में मुस्लिम-पश्चिमी देशों के संबंधों में सुधार लाने संबंधी कोरडोबा पहल, मेड्रिड वार्ता सम्मेलन जो कि सऊदी अरब तथा स्पेन का संयुक्त प्रयास था, स्वर्गीय पोप जॉन पॉल-II के असीसी सर्वधर्म प्रयास और मुस्लिम विद्वानों का 'कॉमन वर्ड इनिशियेटिव' शामिल है।

हासिल की गई महत्वपूर्ण प्रगति के बावजूद यह देखा गया है कि सर्वधर्म संवाद कुछ लोगों तक ही सीमित रहा है और आम जनता के स्तर तक नहीं फैला है।

सामान्य तौर पर धर्म में धर्म या मत के नियम और उनसे उत्पन्न हुए अनुष्ठान, दोनों ही शामिल हैं। दोनों एक दूसरे से संबंधित हैं किंतु समानार्थक नहीं हैं। इसके अलावा, सभी धर्म कतिपय सार्वभौमिक मूल्यों तथा मानव आचरण के सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं जो एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं। आध्यात्मिक पटल पर रचयिता, रचना के प्रयोजन, रचयिता और रचना के बीच संबंध के बारे में सोच समानान्तर दिशा में चलती है तथा लगभग समान निष्कर्षों पर पहुँचती है। एक बार उस स्तर तक पहुँचने के बाद, समानताएं रह जाती हैं:-

हम मुवाहिद हैं हमारा कैश है तर्क-ए-रुसूम
मिल्लतें जब मिट गईं अजज़ा-ए-ईमान हो गईं

विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच संवाद और चर्चाएं सदैव होती रही हैं और यह कोई आधुनिक युग की नवीनता नहीं हैं। कभी-कभी ये चर्चाएं राज्य द्वारा प्रेरित होती हैं और अक्सर ये व्यक्तिगत या सामूहिक पहलों के कारण होती हैं।

यह पृष्ठभूमि हमें कुछ प्रश्नों का समाधान ढूंढने में मदद करती है। इस पारस्परिक संपर्क में एक दूसरे को समझने की प्रक्रिया, विशेषकर एक-दूसरे के धर्मों और मतों को समझने में किस हद तक मदद दी है? समानता और भेद के बिन्दु क्या-क्या थे? किस हद तक ये समानताएं और भेद राजनीति और शासनकला द्वारा प्रभावित थे? इनसे क्या निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं? इन सबसे बड़ी बात यह कि आज क्या किये जाने की आवश्यकता है?

II

पहली, और स्पष्टतया भारतीय संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात इस्लाम और हिंदू धर्म के बीच सम्पर्क है। यह देश और काल में घटित कोई एकल विचार-बिन्दू नहीं था और इसकी प्रतिक्रिया की पद्धतियां एक समान नहीं थीं। दक्षिणी भारत में इस्लाम एक आस्था के रूप में व्यापारियों के माध्यम से आया और इसे समायोजित होने में कोई खास मुश्किल नहीं हुई। उपमहाद्वीप के अन्य स्थानों में यह कहानी कुछ अलग थी जहां इस्लाम की पहचान प्राय: शासकों से हुई; लेकिन, यहां भी, प्रतिक्रिया की पद्धतियां अलग-अलग थीं और उनके समांगीकरण से न तो इतिहास और न ही उचित सद्भाव में कोई फायदा हुआ।

यह सत्य है कि सभी सामाजिक व्यवस्थाओं पर आस्था पद्धतियों और राजनीति का प्रभाव पड़ता है। अत:, इन दोनों के बीच के संबंध को समझने के लिए यह आवश्यक है कि (क) एक धार्मिक कार्य जो राजनीतिक रूप से सुसंगत अथवा सुनिश्चित हो और (ख) एक राजनीतिक कार्य जो धार्मिक रूप से सुसंगत अथवा सुनिश्चित हो के बीच फर्क किया जाये। दोनों श्रेणियों में बहुत से उदाहरण इतिहास और चालू प्रथाओं में मिल सकते हैं।

हिंदू धर्म के बारे में मुस्लिम धारणा का एक प्रारम्भिक उदाहरण मध्य एशिया के विद्वान अबू रेहान अलबेरुनी द्वारा 11 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में लिखे गए लेख में मिलता है। उसने दोनों धर्मों के अनुयायियों के बीच की असमानताओं को स्पष्टत: स्वीकार किया और महमूद गज़नी के आक्रमण से पनपी गहरी नफरत को उजागर किया और फिर उसने हिंदू धर्म के सार को वर्णित किया:

"ईश्वर के बारे में हिंदू यह मानते हैं कि वह एक शाश्वत, आदि-अंत रहित, स्वेच्छा से कर्म करने वाला, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, जीवंत, जीवनदायी, प्रबल, रक्षक है: उसकी सम्प्रभुता अद्‌भुत, पूर्णत: समानता तथा असमानता से परे है, और न तो वह किसी के जैसा है और न ही कोई उसके जैसा है।"

14वीं शताब्दी में इसी अंदाज में अमीर खुसरो ने कहा कि हिंदू उन अच्छे लोगों में शुमार हैं जो एक ऐसे ईश्वर में विश्वास करते हैं जो सर्वशक्तिमान एवं सर्वज्ञ है और "विशुद्ध सत्य तथा अद्‌भुत वास्तविकता है"।

इस सोच का एक अन्य उदाहरण दारा शिकोह द्वारा रचित मजमा-उल बहरैन थी जिसमें, भारतीय एकेश्वरवाद के बारे में उसने यह निष्कर्ष दिया कि "जिस ढंग से, उन्होंने सत्य खोजा और समझा, उसे उसमें, मौखिक के सिवाए, कोई फर्क नहीं मिला।" (जुज़ इख्तिलाफ़-ए-लफ्ज़ी दर दरयाफ्त ओ शेनाख्त-ए-हक, तफ़ावती न दीद)।

20वीं शताब्दी में, मुहम्मद इकबाल ने एक लोकप्रिय कविता, *हिंदुस्तानी बच्चों का कौमी गीत* में कुछ बढ़ कर ही कह दिया:

वहादत की लई सुनी थी दुनिया ने जिस मकान से
मिर-ए-अरब को आई ठंडी हवा जहां से
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है

इनके जरिए दोनों विश्वास पद्धतियों के लिए एक पारस्परिक सराहना का संकेत मिलना चाहिए था। मुगल शासक अकबर और उसके प्रधान मंत्री अबुल-फजल ने करीब-करीब ऐसी सराहना की थी। लेकिन, शासन कला की मजबूरियों से अधिकांश शासक इसकी विपरीत दिशा में चले। परिणामस्वरूप, आध्यात्मिक तथा सामाजिक मूल्यों के बजाए पूर्वाग्रहों को पालकर मूलत: पहचान कायम की गई। राजनीति ने इसमें काफी हद तक योगदान दिया। शासक राजनीतिक और आर्थिक विचारों से प्रेरित थे; उनकी आस्था के सिद्धांतों ने उनके कृत्यों का विरले ही मार्गदर्शन किया। इस सोच का नतीजा दोहरा था: एक धरातल पर तो दैनिक जीवन में लोगों के एकजुट होने से आदतों व परम्पराओं पर असर पड़ा और वे एक-दूसरे को स्वीकार करने की ओर प्रवृत्त हुए; दूसरे धरातल पर, वे एक साथ तो रहे, पर पृथक् रूप से।

जैसा कि एक विद्वान ने कहा था, इस खाई को सूफियों द्वारा पाटा गया, जो धर्म को वर्गों से उठाकर आम जनता की ओर ले गए; एक अन्य विद्वान ने इसे "अन्तर-धार्मिक संवाद का सचल अवतरण" के रूप में वर्णित किया। इससे कुछ हद तक सफलता मिली, भक्ति आंदोलन पर इसकी छाप पड़ी, विचारों पर इसका कुछ फर्क पड़ा, पर इससे बड़ी तस्वीर नहीं बदली। समय के साथ-साथ नकारात्मक धारणायें मजबूत हुईं।

अत: यह स्पष्ट है कि समुचित ज्ञान और सदाशयता होने के बावजूद, गलत धारणाओं को प्रबल होने दिया गया। भारतीय समाज पर उनके प्रभाव के बारे में बताने की आवश्यकता नहीं है। समय की मांग है कि आपसी समझ को और बढ़ाने के लिए अधिक प्रभावी सोच लाई जाए।

III

सामाजिक व्यवस्था के प्रथम सिद्धांतों के साथ एक शुरूआत करनी होगी। ये मूल्य ऐसे हैं जो सामाजिक आचार-विचार को विनियमित करते हैं और न्याय दिलाते हैं। एक धार्मिक रूप से सजातीय समाज में इन मूल्यों को सामान्यत: धर्म से लिया जाता है या ये धार्मिक उपदेशों द्वारा

निर्धारित होते हैं; जबकि एक गैर-सजातीय समाज में एकमात्र उपलब्ध और स्वीकार्य मार्ग सभी धर्मों के ऐसे साझा मूल्यों को तलाशना है, जिन्हें सभी धर्मों के अनुयायी मानते हैं और जो प्रत्यक्षत: किसी भी वर्ग के लिए आपत्तिजनक नहीं है। अपने राजनीतिक स्वरूप में हर समाज इन साझा मूल्यों को स्वीकार करता है और साथ ही धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को भी मानता है। इस बारे में इतिहासकार एडवर्ड गिब्बन ने प्राचीन रोम की गणतांत्रिक अवधि में इसके संदर्भ में विस्तार से बताया और उनके शब्द आज भी प्रासंगिक हैं:

> *"लोगों द्वारा उपासना की विभिन्न पद्धतियों को समान रूप से सही, दार्शनिकों द्वारा समान रूप से गलत और दंडाधिकारी द्वारा समान रूप से उपयोगी माना जाता था और इस प्रकार सहिष्णुता से न केवल पारस्परिक उदारता की भावना पनपी, बल्कि इससे धार्मिक सौहार्द भी कायम रहा।"*

आज हमारी अपेक्षा इससे अलग नहीं है। हमें सहिष्णुता से भी आगे जाना होगा; समानता के दायरे में धार्मिक सौहार्द की अत्यावश्यकता स्पष्ट और अप्रतिरोध्य है। और यह केवल सतत्, स्पष्ट और निर्बाध बातचीत, जो श्रेष्ठता या हीनता के भाव से रहित हो के माध्यम से और सामाजिक समरसता के लिए आवश्यक नैतिक मानकों को बनाए रखने के लिए जरूरी साझा मूल्यों का पता लगाने और साझा लक्ष्यों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से ही संभव है। इन मूल्यों की पहचान की प्रक्रिया से अन्य साझा घटक भी सामने आएंगे। बांटे गए सार्वजनिक आधार के पुराने अनुभव, हर दिन होने वाले संप्रेषण में साझा राष्ट्रीय संसाधनों पर चर्चा तथा ऐसे तंत्र, जो मतभेदों को दूर करते हुए सीमाओं के अंतर को पाट सकें, से इस प्रक्रिया में मदद मिलेगी।

साझा मूल्यों की खोज धर्मों का विकल्प नहीं होगी। इसका एकमात्र उद्देश्य उन न्यूनतम मौलिक मूल्यों की पहचान करना है, जिन पर आम सहमति हो या आम सहमति विकसित की जा सकती हो; इनके अंतर्गत मानव जाति की एकता में विश्वास तथा मानवों के बीच समानता, चिंतन-

मनन, साधना, संयमित जीवन, न्याय, दया, सच्चाई, गरीबों और जरूरतमंदों की मदद, संतोष का भाव, आत्म सम्मान, सहिष्णुता तथा सामाजिक शांति एवं स्थिरता का संवर्द्धन जैसे घटक शामिल होंगे। ये मूल्य हमें जोड़ते हैं, तोड़ते नहीं हैं; ये प्रेम को बढ़ावा देते हैं, न कि नफरत को। चूंकि ये सभी धर्मों में निहित हैं, इस कारण ये औपचारिक सीमाओं से बंधे हुए नहीं हैं। एक साथ इनमें शांति, जीवन एवं अहिंसा के प्रति सम्मान, न्याय एवं सामाजिक सुदृढ़ता, सच्चाई और मानवीय समानता की संस्कृति के प्रति प्रतिबद्धता दीखने लगेगी।

प्रतिबद्धता इस विषय का एक पहलू है, जबकि अभ्यास दूसरा पहलू है। यह अभ्यास कुछ चुनिंदा लोगों के समूह से परे जाकर जन-सामान्य तक पहुंचना आवश्यक है। अंतिम विश्लेषण में, हमारा मूल्यांकन इससे नहीं होगा कि हम क्या कहते हैं, बल्कि हम क्या करते हैं, उससे होगा। इसे सार्थक तरीके से करने के लिए, सांस्थानिक प्रबंध उपयोगी होंगे; ये साध्य के लिए साधन बनेंगे, न कि स्वयं साध्य।

IV

आज का सम्मेलन पूर्वी एवं दक्षिणी एशियाई देशों के संदर्भ में उनके विभिन्न धर्मों के बीच संवाद को किस प्रकार बढ़ावा देना है, के संबंध में होने वाली बहस की प्रक्रिया का आरंभ है। यह इस बात की पुष्टि है कि यह प्रक्रिया धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शैक्षणिक और मीडिया स्थापनों के बीच सहयोग के जरिए आरंभ होती है जिससे नैतिक मूल्यों को सुदृढ़ बनाया जा सके और प्रगतिशील सामाजिक पद्धतियों को बढ़ावा मिले।

प्रो. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन का व्यापक अध्ययन करते हुए कहा है: "वे दो पहलू, जो विभिन्न रूपों में भारतीय विचारकों के सभी प्रयासों में सक्रियतापूर्वक निहित हैं, वे हैं परंपरा के प्रति निष्ठा और सच्चाई के प्रति श्रद्धा। विभिन्न विचारों को मानव मन के अज्ञात को जानने के लिए किए गए साहस या दर्शन संबंधी उत्सुकताओं का संग्रह नहीं माना जाता है। उन्हें

एक मन की ऐसी अभिव्यक्ति माना जाता है, जिससे महान मंदिर का निर्माण हुआ है, हालांकि यह अनेक दीवारों और प्रकोष्ठों, गलियों और स्तंभों में विभाजित है।"

सर्वधर्म संवाद हमारे द्वारा ग्रहण की गई इसी भारतीय विरासत को ध्यान में रखकर होना चाहिए। इस विरासत की कोई विशिष्ट धार्मिक, भाषायी या सांस्कृतिक पहचान नहीं है और इसे अनन्य या सर्वसमावेशी रहित बनाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। हमारे संवैधानिक आदर्शों का समावेशी स्वरूप इसी विरासत से प्रेरित है और इसे और अधिक सुदृढ़ करने वाली कोई भी प्रक्रिया राष्ट्र के लिए अच्छी है और उसे प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है।

इस सम्मेलन का संदेश जोरदार व स्पष्ट होना चाहिए:

आ गैरत के पर्दे एक बार फिर उठा दें
बिछड़ों को फिर मिला दें, नक्श-ए-दुइए मिटा दें

मैं इस सम्मेलन के उद्घाटन हेतु मुझे आमंत्रित करने के लिए डा. ज़फरुल इस्लाम खान को धन्यवाद देता हूँ और इसके विचार विमर्शों की पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ।